तत्वार्थ सूत्र के षष्ठ्म अध्याय के माध्यम से जीव के परिणामों के माध्यम से कौन-कौन से विशेष रूप से कर्मों का आश्रव होता है, यह बताया जा रहा है। साता असाता वेदनीय के आस्रव के कारण बताए जा चुके हैं। आगे प्रारंभ होता है दर्शन मोहनीय कर्म आस्रव के विशेष कारण।

# Class 16

केवलि-श्रुत-संघ-धर्म-देवा-वर्णवादो दर्शनमोहस्य।।**1.13**।।

दर्शन मोहनीय कर्म

दर्शन मोह यानी ऐसा कर्म जो हमारे श्रद्धा को, हमारे faith को मोहित कर देता है। हमारे सही विश्वास को जो होने नहीं देता, हमारी सही श्रद्धा को जो बिगाड़ देता है, उस कर्म का नाम है- दर्शन मोहनीय कर्म। इसको बोलते हैं- 'faith eluding Karma. वह कर्म जो हमारे विश्वास को मोहित कर देता है, और वह उल्टा करके हमारे सामने ला देता है, उसका नाम है- दर्शन मोहनीय कर्म। दर्शन का मतलब श्रद्धा होती है, विश्वास होता है। वह किन के विषय में, किस तरह से कर्म के आस्रव का कारण बनता है? यह बताया जा रहा है।

**1** केवली भगवान या अरिहंत का स्वरूप जैसा है वैसा ही बताना ।

सबसे पहले सूत्र में आया है- केवली यानी केवली भगवान। अरिहंत परमेष्ठी को केवली भगवान कहते हैं। जिन्हें केवल ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है और जो अपने शरीरगत जितनी भी उनके शरीर में बनने वाली धातुएँ, उपधातुएँ होती हैं, वह सब केवलज्ञान होने के बाद स्थिर हो जाती हैं। फिर उन्हें शरीर के लिए कुछ भी करना फिर आवश्यक नहीं रह जाता। उनका ज्ञान एक साथ सभी पदार्थों में परवर्तन करने लग जाता है, एक साथ चराचर पदार्थों को देखने और जानने की शक्ति प्रकट हो जाती है। उन्हें हम केवली भगवान कहते हैं, उन्हीं को हम अरिहंत कहते हैं। अब इन केवली भगवान का स्वरूप ऐसा है, अब यहाँ जो दर्शन मोहनीय कर्म के लिए कारण क्या है? इसमें एक शब्द दिया है- अवर्णवाद। क्या शब्द दिया? अवर्णवाद! अवर्णवाद एक शब्द है, जिसका अर्थ होता है कि उनके विषय में जैसा है वैसे नहीं कहना, उलटा कहना, विपरीत बोलना और जो लोग किसी से भी सुन लेते हैं उनके अनुसार बोलना या अपनी बुद्धि के अनुसार बोलना। यानी जिसके अन्दर कोई दोष नहीं भी हैं तो भी उसके अंदर दोष बताना यह कहलाता है- अवर्णवाद।

जिसका जैसा स्वरूप हो वैसा स्वरुप न जान करके उल्टा बताना, उसमें दोष नहीं भी है तो भी दोष दिखाना, विपरीत बोलना या विपरीत धारणा रखना, यह अवर्णवाद कहलाता है। अगर हम केवली भगवान का अवर्णवाद करते हैं तो उससे दर्शन मोहनीय कर्म का आस्रव होता है। इसी दर्शन मोहनीय

कर्म को हम मिथ्यात्व कर्म भी कहते हैं। जिसे हम संसार का कारणभूत परिणाम भाव कहते हैं, वह मिथ्यात्व कहलाता है। उस मिथ्यात्व का एक तो हमारे अपने ही कर्मों के उदय से, हमारे अंदर उसका परिणाम बना रहता है। जिससे हम स्वतः होने वाला, निसर्ग से होने वाला मिथ्यात्व कहते हैं। एक जो मिथ्यात्व होता है, वह हम ग्रहण करते हैं, दूसरों के उपदेशों से। अगर हम थोड़ा सा संज्ञी है, मन वाले हैं तो हमारे मन में भी तरह-तरह के मिथ्या विचार आते हैं और उसके माध्यम से भी हम अरिहंतो के प्रति गलत धारणा रखते हैं, गलत विश्वास रखते हैं। जिसके कारण से हम उन्हें, अरिहंत को अरिहंत जैसा नहीं समझते हैं। जो अरिहंत को अरिहंत जैसा नहीं मानते या नहीं समझते वे सब अरिहंत का अवर्णवाद करते हैं, इसी को केवली का अवर्णवाद कहते हैं।

अवर्णवाद के दो स्तर होते हैं

अवर्णवाद किस रूप में होता है? अवर्णवाद के दो स्तर होते हैं- एक तो अपना शारीरिक स्तर है। संसार के सभी प्राणी जिस तरीके से संसार में जीते हैं, उसी तरह से सब लोगों को देखते हैं कि सब भी इसी तरीके से जीते हैं। जब किसी अरिहंत की, केवली की या किसी विशिष्ट रूप से उन्हें किन्हीं भगवान या तीर्थंकर किसी भी तरह से जानकारी मिलती है, तो सबसे पहले हमारी मिथ्या बुद्धि में यही उत्पन्न होता है कि यह सब बातें बहुत ज्यादा अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। किसी भी पढ़े-लिखे व्यक्ति से अगर आप कभी अरिहंत भगवान का वर्णन करेंगे तो सबसे पहले उनके दिमाग में आयेगा कि यह इनकी अपनी धारणा है। यह उन्होंने अपने भगवान को ऐसा बना रखा है। ऐसा किसी के लिए होना संभव नहीं है, ऐसा कोई भी आत्मा हो नहीं सकता है। जैसा हम अपने शरीर के साथ जीते हैं, वैसा ही हम समझते हैं सब का शरीर होता है। एक शरीर के स्तर पर हम अपनी धारणा बना करके रखते हैं और एक आत्मा के स्तर पर अपनी धारणा बना करके रखते हैं। शरीर के स्तर पर जब हमारी धारणा इसी तरह की बनी रहती है कि जैसे हम खा रहे हैं, पी रहे हैं, हमें सोना पड़ता है, हम जिस तरह से अपने शरीर को चलाने के लिए थकते हैं, मेहनत करते है। जिस तरह से हम शरीर के साथ रहते हैं, वैसे ही कोई भी हो चाहे भगवान हो, अरिहंत हो, चाहे कोई भी कथागतित भगवान हो वह सब शरीर के स्तर पर ही रहते है। सब को इस तरह के चीजों की जरूरत पड़ती ही है। यह बहुत ही अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन जैनों ने कर रखा है। जो कहते हैं- केवली भगवान भोजन नहीं करते, केवली भगवान कभी पानी भी नहीं पीते, कभी उनको रोग नहीं होते, कभी वे बीमार नहीं पड़ते। यह सब उन्होंने अपने भगवान की अतिशयोक्तिपूर्ण बातें बना रखी हैं। इस तरह से पढ़े-लिखे लोग बोल सकते हैं, कहते ही हैं और कहेगें ही रहेंगे।

कुछ दार्शनिक तीर्थंकर भगवान महावीर को विशेष पुरुष नहीं मानते हैं

कई दार्शनिक तो यह सब बाते कह भी चुके हैं। इसमें कोई विस्मय की बात भी नहीं है। इस तरह से किसी भी दार्शनिक का स्तर जो वहाँ तक नहीं पहुँचा है जो अपने ही स्तर से बात कर रहा है तो वह कहता है कि

तीर्थंकर भगवान महावीर हम ही जैसे सामान्य पुरुष है, हम उन्हें extraordinary बता देते हैं। जैन लोग हैं, विशेष रूप से अपने भगवान का गुणगान करने के लिए तरह-तरह के अतिशय दिखाते हैं। उनके शरीर में पसीना नहीं आता। उनका blood का रंग सफेद होता है। कभी उनके लिए नींद नहीं आती और तरह-तरह के अतिशय बताया करते हैं। यह सब अपने भगवान के प्रति जरूरत से ज्यादा ही भक्ति भावना कह लो या ज्यादा कुछ भगवान को बड़ा दिखाने की भावना कह लो। इस तरह की भावना से ये लोग ऐसी बातें करते हैं बाकी भगवान तो अपने ही जैसे होते हैं, ordinary होते हैं। उनको सब भूख, प्यास, निद्रा काम-वेदना सब कुछ होता है और थोड़ा किसी में ज्यादा होता है किसी में कम होता है, बाकी उससे रहित तो कोई भी नहीं होता। जैसे हम लोग खाते-पीते हैं, कभी कभी नहीं खाते, नहीं पीते हैं ऐसे ही भगवान के अंदर काम-वेदना कभी-कभी हो जाती है, हम लोगों को ज्यादा हो जाती है, उनको कम होती है। सामान्य से जब व्यक्ति इस तरह से वर्णन करता है तो बहुत से जो व्यक्ति होते हैं, जो पढ़े-लिखे भी होते हैं और वह इस तरह से जब कुछ सुनते हैं तो उनके मन में अवश्य विश्वास पैदा हो जाता है कि हाँ यह आदमी बहुत अच्छा चिंतक है। यह आदमी बहुत अच्छा हर तरीके का विषय जो है अच्छे ढंग से explain करता है। इस तरह से जब उनके अंदर ज्ञान आने लग जाता है तो उनकी धारणा वैसी बन जाती है कि केवली कुछ अलग नहीं होते, अरिहंत कुछ अलग नहीं होते। यह तो सब हमने अपने अपने भगवान को बड़ा बनाने के लिए बड़ी बड़ी बातें बना रखी है। भगवान सब सामान्य ही हैं खाते-पीते बीमार सब पड़ते हैं और भगवान का जन्म नहीं होता, मरण नहीं होता जबकि सब कुछ होता है। नहीं होता तो कहाँ रहते? यहीं पर मिलते। यह सब कुछ जो हम बताते रहते हैं यह भी जो है उनके प्रति बहुत ज्यादा इन जैनियों की मनगढ़ंत अतिशय रूप बातें हैं, वे बनी रहती हैं। इस कारण से अपने भगवान को बहुत बड़ी-बड़ी बातें बना करके बड़ा-बड़ा बनाए रखते हैं।

दर्शन मोहनीय कर्म के आस्रव का कारण

इस तरह के कई philosopher's की किताबों में लिखा मिलेगा और उनके प्रवचनों में भी इस तरह से लिखा मिलेगा। आप उनकी बातों को भी सुन सकते हैं। फिर आपके मन में क्या आएगा? बात तो सही है ऐसा कुछ होता नहीं है। फिर यही जो कहना है या इस तरीके से अपने अंदर जो विश्वास बना लेना है इसी का नाम है- केवली का अवर्णवाद। हमने उनको समझा नहीं, उनको जाना नहीं, उनकी विशेषताओं को हमने स्वीकार किया नहीं और वह किस लिए इतने विशेष हो गए उन सब चीजों को भी हमने समझा नहीं। एक सामान्य व्यक्ति की तरह सामान्य व्यक्ति की बातों में आकर हमने उनके प्रति धारणा बना ली कि केवली भी आहार करते हैं, कवलाहार करते हैं। उनको भी रोग होते हैं, वे भी दवाइयाँ खाते हैं, वे भी पानी पीते हैं। वे भी जो है सब तरह से अपने साथ में कोई भी तरह की, मन से, वचन से, काय से प्रवृत्ति कर सकते हैं और वह भी कोई ऐसा नहीं है कि उनका ज्ञान, यह तो शरीर के स्तर पर बात हो गई।

केवली भगवान तीनों लोक के सब पदार्थों को युगपत देखते हैं

अब आत्मा के स्तर पर देखें तो जैनी लोग कहते हैं- कि केवली भगवान एक साथ तीन लोक के सब पदार्थों को जानते हैं, देखते हैं। आदमी कहता है ऐसा कुछ नहीं होता है। जैसा हम जानते देखते हैं वैसे ही वह जानते-देखते हैं। बस! उनकी समझ थोड़ी ज्यादा हो जाती, थोड़ा सा अच्छा जान लेते हैं। जैसे ज्ञान हमेशा परिवर्तित होता है, क्रम क्रम से हमारा ज्ञान आता है, ज्ञान कभी घटता है, बढ़ता है, उस तरीके से केवली भगवान में नहीं होता। यह जैनी लोग कहते हैं। लेकिन जो पढ़े-लिखे लोग हैं वह कहते हैं कि नहीं! ऐसा कुछ नहीं होता है। भगवान का भी ज्ञान ऐसा ही रहता है और जो आप कहते हो भगवान का ज्ञान एक साथ सब पदार्थो को जानता है तो यह तो कभी possible ही नहीं है। कोई भी व्यक्ति एक साथ सब पदार्थों को कैसे जान लेना? सूक्ष्म, स्थूल, दूर का, पास का, present का, future का, past का तो यह तो सब भगवान का ज्ञान है। इन सब लोगों ने भगवान के प्रति बहुत बड़ी बातें बना रखी है। इस तरह से हमारी बुद्धि में भी यही बात आ जाना कि हाँ! भगवान भी हमारी तरह जानते देखते हैं। उनको थोड़ा ज्यादा knowledge होगा, क्षयोपशम थोड़ा ज्यादा होगा, थोड़ा कम होगा। एक साथ सब पदार्थ को जान रहे हो या एक साथ सब पदार्थ को देख रहे हो। अनंत अतींद्रिय आनंद में चले गए हो और उन्हें कोई संसार से मतलब नहीं है। इस तरीके का कुछ नहीं होता है, वह सबकी सुनते हैं। सबके साथ में भी रहते हैं और सब की बात को सुनकर के जवाब भी देते हैं तो वह कोई अतींद्रियपने में नहीं चले गए वह इंद्रिय के साथ में ही है।

अवर्णवाद फैलाना बहुत बड़ा पाप है

इस तरह से तरह-तरह के बड़े-बड़े दार्शनिक और अपने आप को पढ़ा-लिखा मानने वाले अच्छे लोग भी जो है व्याख्यान करते हैं और तीर्थंकरों की केवलियों की निंदा इस तरीके से करते हैं। यह निंदा ही कहलाएगी क्योंकि जो हम अपनी बुद्धि से कह रहे हैं दूसरे के बारे में और हम उसका जो वास्तविक जो उसकी realistic, उसकी characteristics है वह तो हम जानते ही नहीं और हम अपने मन से जो सब कह रहे हैं यह सब अवर्णवाद कहलाता है। उनकी जो वास्तविकता है वह स्वीकार नहीं कर रहे हैं। समझ नहीं पा रहे हैं और आप अपने मन से ही उनकी बारे में अपनी एक धारणा बना ली कि आप श्रोताओं की धारणा बना रहे हैं तो आप उस अवर्णवाद को फैला रहे हैं। यह बहुत बड़ा पाप है। जो जैसा है उसके बारे में वैसा न बोलकर अपनी ही बात बोलना, उसके विपरीत बोलना अपनी कलुषिता, अपनी कम बुद्धि के साथ उसको नापना और उस उच्च स्थिति में बैठे हुए व्यक्ति को अपने से नाप करके, अपने बराबर ही, अपने दर्जे पर उसको ले आना और एक सामान्य व्यक्ति की तरह उसे सबके सामने प्रस्तुत करना यह बहुत बड़ा दर्शन मोहनीय कर्म के आस्रव का कारण है।

भगवान कभी लिखते नहीं हैं

ओशो जैसे philosopher's ने बहुत अच्छे ढंग से इसमें कामयाबी हासिल की है। सब लोग जानते हैं तो इस तरह के जो अवर्णवाद है, यह केवली भगवान के विषय में कही गई बातें यह मिथ्यात्व कर्म के आस्रव के कारण है। यह जो मिथ्यात्व कर्म के आस्रव के कारण हो गए तो उसी तरीके से और भी चीजें हैं, उन्हीं केवली भगवान से जुड़ी हुई, एक तो केवली का वर्णवाद हो गया फिर श्रुत का नम्बर आ जाता है।

केवली भगवान का ज्ञान श्रुत के रूप में हमें मिला है
श्रुत मतलब जो केवली भगवान ने कहा था उसको, जो विशेष ज्ञान के धारी होते हैं, ऐसे गणधर आदि परमेष्ठी हैं, उन्होंने उस ज्ञान को समझ करके उसे तरह-तरह से अलग-अलग subject wise उसको गूँथा, उसे ग्रंथ का एक रूप दिया और उन सब के अनुसार जो ज्ञान मिला था, उन सब ज्ञान के अनुसार उन्होंने उसे अनुयोगो में विभाजित करके हमें वह ज्ञान पहुँचाया, हमारे तक वह ज्ञान आया। उसको बोलते हैं श्रुत ज्ञान। जो knowledge हमें शास्त्रों से मिलती है, वह श्रुत ज्ञान ही कहलाता है। इसे हम spiritual knowledge बोलते हैं, वह सब हमें श्रुत ज्ञान के रूप में ही हमारे सामने होते है। जो हमारे पास में जो शास्त्र होते है, जो आगम की एक अवधारणा जो हमें भगवान के ज्ञान से मिली, गणधर परमेष्ठी के माध्यम से हमारे पास में आई उसी को श्रुत कहा जाता है। आगम कहा जाता है, शास्त्र कहा जाता है, जिनवाणी कहा जाता है, परमागम कहा जाता है, सिद्धांत कहा जाता है। अब उसके विषय में भी अवर्णवाद होता है।

**2)** श्रुत का अवर्णवाद
इसके जो श्रुत है, तो श्रुत के विषय में ऐसा कोई श्रुत नहीं होता, कोई शास्त्र नहीं होता जो केवली के द्वारा कहा गया हो। आजकल के पढ़े-लिखे बच्चे आपसे कोई प्रश्न कर देंगे, कोई ऐसा शास्त्र बताओ जो भगवान ने लिखा हो? एक बहुत अच्छी बात यह है कि प्रश्न करने के लिए ज्ञान की जरूरत नहीं होती। प्रश्न तो कोई भी मूर्ख भी बहुत अच्छे से अच्छा कर सकता है और ऐसा प्रश्न कर सकता है कि बड़े से बड़े ज्ञानी उसका उत्तर न दे पाए। किसी भी तरीके का कुतर्क प्रस्तुत कर देना, किसी भी तरीके का प्रश्न कर देना, इसके लिए ज्ञान की जरूरत नहीं है। इसके लिए तो भीतर केवल कलुषित परिणाम की आवश्यकता है और उस कलुषित परिणाम या भाव के माध्यम से हम कोई भी कुतर्क उपस्थित कर सकते हैं। ज्ञानी के प्रश्न का उत्तर मिल भी जाता है लेकिन मूर्खों के प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता। उनके प्रश्न ऐसे होते हैं कि जब उनका उत्तर नहीं मिलता तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती है। मेरे प्रश्न का यह उत्तर नहीं दे सकते हो। तुम कैसे ज्ञानी हो?

# Class 17

वे अपनी उस मूर्खता पर बड़े प्रसन्न होते हैं। उन्हें यह नहीं पता होता कि यह हमारा प्रश्न ही मूर्खतापूर्ण है। जब श्रुत की बात आती है तो हमें प्रश्न तब आना चाहिए जब हमें उसके पीछे आगे कुछ मालूम हो और पीछे-आगे कुछ मालूम होगा तो प्रश्न ही नहीं होगा। प्रश्न होता है तो मतलब हमें कुछ पता ही नहीं होता, Abcd भी नहीं पता होती। इसी तरीके से जब कोई पूछता है, भगवान का लिखा हुआ शास्त्र बताओ। एक बच्चे ने पूछ लिया अगर आप अपने शास्त्रों को तीर्थंकरों की जिनवाणी कहते हो, तीर्थंकरों का बताया शास्त्र कहते हो तो क्या सिद्ध कर सकते हो आप? कि कौन-सा शास्त्र तीर्थंकरों ने लिखा है? भगवान का लिखा हुआ कोई शास्त्र बताओ? भगवान का लिखा कुछ नहीं होता। क्या भगवान भगवान कि वाणी कहते रहते हो। अब आपके पास कोई भी उत्तर नहीं और न आप कोई उत्तर दे कर संतुष्ट कर सकोगे। अतः ज्ञानी कौन हुआ? एक छोटा सा बच्चा बिना पढ़ा-लिखा भी आपके सामने प्रश्न करके चला गया। आप मौन हो गए तो ज्ञानी कौन हुआ? ज्ञानी तो वह हुआ उसके प्रश्न का कोई उत्तर ही नहीं दे पा रहा। अब उसे यह तब समझाया जाए, जब वह प्रश्न करने के बाद में उत्तर सुनने को भी तैयार हो। आप देखोगे जो भी व्यक्ति भीतर से कलुषित परिणाम रखते हैं वह केवल गुस्से में बस प्रश्न करके चल देते हैं और अपने आपको बड़ा literate और बड़ा पढ़ा-लिखा समझ कर, प्रश्न फेंक दिया, चला गया। अब अपना answer देते रहो, लोगों का यह तरीका होता है। ऐसी स्थिति में किसी भी प्रश्न का उत्तर तब दिया जाता है जब सामने वाला समझने की कोशिश कर रहा हो या उसके पास में कुछ Knowledge हो या उसको समझाने के लिए भी उसके पास में कुछ time हो या वह समझना चाहता हो।

भगवान को अपनी वाणी को लिखने की आवश्यकता नहीं थी

भगवान और लिखना यह दोनों चीजें अपने आप में बिल्कुल उल्टी हैं। जो भगवान है उसे लिखने की जरूरत क्या पड़ी? लिखना एक पराधीन काम है। हमें कोई साधन चाहिए, पेन चाहिए, copy चाहिए, कोई ताड़पत्र चाहिए। कुछ न कुछ लिखने के लिए हमें अपना मन बनाना चाहिए, सब कुछ चाहिए और भगवान जो सब लख रहा है उसे लिखने की क्या जरूरत? लखना और लिखना दोनों एक साथ हो ही नहीं सकते। लखना मतलब सब कुछ एक साथ देखना, जिसे दुनिया एक साथ दिखाई दे रही है, एक साथ जानने में आ रहा है, वह कुछ लिखने की कोशिश क्यों करेगा? वह तो सिर्फ देख रहा है, जान रहा है। बस! उसकी इतनी सी प्रवृत्ति है कि उसने कहा है कुछ, सिर्फ कहा है। कहना अलग बात है, लिखना अलग बात है। लिखकर के भगवान ने कभी कोई अपनी प्रमाणिकता नहीं बताई कि यह मैंने देख लिया, यह मैंने जान लिया, यह मैंने अनुभव कर लिया इसलिए यह मैंने लिख दिया। लिखने वाला कोई काम नहीं। भगवान का काम सिर्फ जानना-देखना और ज्यादा से ज्यादा कहना-बोलना बस! उस बोली को भी कोई समझ ले, बस! वह उसके लिए है, हर कोई समझ पाए यह जरूरी नहीं। लिखना तो एक बहुत बाद का काम हो गया। लिखा तो तब जाता है जब हम अपनी प्रशंसा खुद कर रहे हो या हम अपनी चीज को खुद हम प्रमाणिक बनाने के लिए

कोई प्रयास कर रहे हो तब लिखा जाता है। लिखना तो अलग काम हो गया। भगवान को न प्रमाणिकता की जरूरत है, न उन्हें अपनी चीज की कोई प्रस्तुति करने की, प्रशंसा करने की जरूरत है। उन्हें किसी भी तरीके से कोई भी काम लिखने का काम करने का कोई मतलब ही नहीं है। यह लिखने का काम तो बहुत बात की बात है। भगवान की वाणी को श्रुत ज्ञान इसलिए कहा गया है कि श्रुत मतलब होता है- सुनना। सुनो सिर्फ! सुन-सुन करके जो आता गया है, सुन-सुन कर के जो हमारे पास बढ़ता गया है, उसका नाम है- श्रुत ज्ञान। जब सुन-सुन कर के इतनी स्थिति बन गई कि जब यह समझ में आने लग गया अब जो है सुनने से काम नहीं चलेगा, थोड़ा लिखना भी पड़ेगा क्योंकि याददाश्त कम होने लगी है तब थोड़ा लिखना शुरू हुआ है। जब तक तो हजारों वर्ष बीत गए तो लिखने में और भगवान के कहने में बहुत time का gap हो गया और भगवान कभी लिखते है नहीं। भगवान का लिखा हुआ तो कभी कुछ मिल नहीं सकता। भगवान का कहा हुआ मिलेगा और उसकी प्रमाणिकता इस बात से नापी जाएगी कि जो कहा है जा रहा है, वह कभी भी किसी भी तरीके से बाधित नहीं होता हेतु से, तर्कों से हम किसी भी तरीके से हम गलत सिद्ध नहीं कर सकते। इस तरीके के parameters न्याय के लिए बने हुए हैं। अब यह जो कहा जा रहा है, इसी का नाम है- श्रुत ज्ञान और वह श्रुत ज्ञान जो हमारे पास में आया है, उस श्रुत ज्ञान में भी अब कैसा कहना? यही मान लो अवर्णवाद हो गया।

श्रुत ज्ञान को गलत और शास्त्रों के गलत ज्ञान को सही मानना गलत है।

ऐसा कोई श्रुत ज्ञान नहीं होता जो सीधा तीर्थंकरों का ज्ञान हो या तीर्थंकरों के द्वारा हमारे पास आया हो। ऐसा कोई ज्ञान होता ही नहीं क्योंकि उस ज्ञान की कोई सिद्धि होती नहीं। यह क्या हो गया? यह श्रुत ज्ञान का अवर्णवाद हो गया। श्रुत के अन्दर जो भी बातें लिखी हुई हैं, जैसे व्रत करना है, तप-त्याग करना होता है, सम्यग्दर्शन इत्यादि की बातें हैं तो इन बातों को गलत ठहराना। यह सब जितने भी लोग हैं यह अपने-अपने भगवानों के शास्त्र बना लेते हैं और शास्त्रों में ऐसी बातें लिख देते हैं जिससे कि किसी को लाभ नहीं होता। उन शास्त्रों की बात मानकर के किसी का कल्याण नहीं होता। आदमी अहंकारी हो जाता है, इसे पढ़ क्र कभी किसी का हित हुआ ही नहीं है। जितने भी जिद्दी लोग मिलेंगे सब शास्त्र को पढ़कर के जिद्दी बन जाते हैं। बस! यह सिद्धि हो जाती हैं। इस तरह से श्रुत का अवर्णवाद यह कहलाता है। शास्त्रों का अवर्णवाद यह कहलाता है।

श्रुत का अवर्णवाद घर घर में दिखाई देता है ।

कोई भी प्रत्यक्ष ज्ञानियों के द्वारा लिखे हुए कोई शास्त्र नहीं, कोई भी शास्त्रों में तीर्थंकरों से संबंधित साक्षात् हो ऐसे कोई सिद्धि नहीं। किसी भी शास्त्र के माध्यम से स्वर्ग और मोक्ष की जो बातें की गई है वे सिर्फ उनके अपने विश्वास की बातें हैं, वे बातें अपनी मनगढ़ंत होती है। उनमें कहीं कुछ भी नहीं होता। सब कुछ यही होता है स्वर्ग भी यही है, नर्क भी यही है और मोक्ष भी यही है। आदमी-आदमी के काम में

आए, सब के सुख-दुःख में एक समान भाव रखो। बस! यही सुख है, यहीं-यहीं पर स्वर्ग है, कहीं अलग स्वर्ग नहीं होता है। किताबें भरी पड़ी मिलेंगी दार्शनिकों की, प्रवचनकारों की, लाइने लगी हैं। स्वर्ग कोई अलग चीज नहीं होती है। अपने घर में ढंग से रह नहीं पा रहे हो, व्रत करके लड़ाई-झगड़े मचा रहे हो और स्वर्ग की बातें कर रहे हो। यह अवर्णवाद आपको कोई सीखने की जरूरत नहीं है, सब आपके घरों में हो रहा है। शास्त्रों में जो पढ़ोगे वह language अलग है। मैं आपको उस भाषा में सुना रहा हूँ जो आपके घरों में हो रहा है। शास्त्रों में तो पढ़-पढ़ कर फिर आप पंडित जैसे बन जाते हो। जितना लिखा है, उतना ही बोलना है। न उनके समझ में आना है, न आपकी समझ में आना है। जो हमारे बच्चे बोल रहे हैं, ये हमारे बच्चे सब मिथ्यात्व की भाषा ही बोल रहे हैं। जो हमारे बच्चे जिस तरीके के कुतर्क कर रहे हैं, जिस तरीके की बातें उनके दिमाग में आ रही हैं, वे सब किससे? दर्शन मोहनीय कर्म के उदय के कारण से आ रही हैं। तभी ये बातें होती हैं।

मोहनीय कर्म के उदय के कारण ही मिथ्यात्व होता है

आप समझो यही मिथ्यात्व है। यही मिथ्यात्व को आस्रव कराने वाले यही भाव है, जिससे कि हम जो एक valid scripture है, उसको भी हम invalid prove  कर देते हैं। क्योंकि वह हमारी बुद्धि का विषय है ही नहीं, हमें कुछ उसके बारे में पता ही नहीं, हम किसी भी चीज को गलत कहने के लिए स्वतंत्र हैं। इसी का नाम क्या है? अवर्णवाद। जिसको उसके Real nature knowledge नहीं है वह कभी भी उसे गलत सिद्ध कर देगा क्योंकि उसे डर नहीं है। आप कोई भी बात सीख गये हो उसके बाद आप गलत नहीं कर पाओगे लेकिन जिसने कुछ नहीं सीखा है वह गलत कह सकता है। उसे कोई डर ही नहीं है। शास्त्रों में लिखा है चारित्र धारण करना चाहिए, सम्यग्दर्शन का पालन करना चाहिए। सम्यग्दर्शन क्या होता है? कट्टरवादी बना देते हैं। यह सब सम्यग्दर्शन क्या होता है? अवर्णवाद करना है तो कोई भी कर सकते हैं। मतलब क्या? कि आपको वीतराग भगवान पर ही श्रद्धा रखनी मतलब आप कट्टरवादी हो गए। शास्त्र यही सिखाते हैं, कट्टरवादी बनाते हैं, हमेशा लड़ाई झगड़ा करना सिखाते हैं। ऐसा बोलना ही क्या हो गया? आपने समझा ही नहीं कि सम्यग्दर्शन का मतलब क्या? कट्टरपने में और सम्यग्दर्शन में भी कोई अंतर है कि नहीं। सम्यग्दर्शन क्या केवल धर्मांध होता है या कोई अपने विवेक से चलकर के सत्य-असत्य का निर्णय करके प्राप्त होता है। कुछ भी आपने समझा नहीं। बस बकवास कर दी, बोलना शुरू कोई भी कर सकता है। मैं भी एक घंटा उल्टा प्रवचन कर सकता हूँ। आपको लगे कि वास्तव में महाराज! बिल्कुल सही कह रहे हैं, आप भी मुंडी हिलाओगे। लेकिन क्या करें, हम ऐसा कर नहीं सकते।

किसी भी बात को उल्टा सीधा करके बोलना **knowledge** नहीं है

अतः यह एक ऐसी चीज है, जिसके बारे में कोई भी अपने वचनों से किसी को कुछ भी समझा सकता है। सही को गलत सिद्ध करके समझाना, किसी भी चीज का मजाक उड़ाना बहुत आसान होता है। मजाक

किसका नहीं उड़ाया जाता है? एक बच्चा जो 9th या 8th का बच्चा class में पहुँचा है, जिसके सामने एक professor के रूप में एक teacher खड़ा हुआ है तो उसका भी मजाक बनाने में second नहीं लगता तो मजाक किसका नहीं बनाया जा सकता? उल्टा किसको नहीं बोला जा सकता है? comment pass करना कोई knowledge नहीं कहलाता। किसी भी चीज के लिए हम कुछ भी उल्टा-सीधा बोल दे, इसका नाम knowledge नहीं होता है। यह तो बच्चा भी कर लेता है और करते ही रहते हैं। ये बड़े-बड़े बच्चे headmaster हो, चाहे professor हो, चाहे principal हो, किसको comments नहीं करते? यह तो करते ही रहते हैं और आपस में हँस भी लेते हैं। इसका मतलब यह तो नहीं हो गया कि वे principal से ज्यादा knowledge वाले हो गए। समझ आ रहा है? ऐसे ही पढ़े-लिखे बच्चे अपने हैं। केवली भगवान के बारे में कुछ भी कह सकेंगे, श्रुत के बारे में कुछ भी कह सकेंगे। यह सब अवर्णवाद करने के लिए तैयार क्यों हैं? क्योंकि उनके अन्दर वह right knowledge है ही नहीं। right knowledge क्यों नहीं है? क्योंकि मिथ्यात्व का ही निरंतर उदय और मिथ्यात्व का ही निरंतर आस्रव हो रहा है, तो मिथ्या ही बोलेंगे और मिथ्या ही विचार आएँगे। यह क्या कहलाता है? यह सब अवर्णवाद कहलाता है। अतः शास्त्र संबंधी जो कुछ भी मिथ्या धारणाएँ लोगों की बनी हुई हैं, यह सब उस श्रुत का अवर्णवाद करते रहते हैं। अपने ही बच्चे, अपने ही पले-पोसे, अपने ही कोख से पैदा हुए धर्म का अवर्णवाद करने के लिए तैयार खड़े हैं। बचाओ? किसको बचाओगे। धर्म बचाओ आंदोलन, अपने घर से शुरू करो। हमारे बच्चे ही तो नहीं मानते। क्या सुनते हैं, क्या समझते हैं? बस! किसको समझाने जाओगे।

संघ मतलब रत्नत्रय धारी मुनि

यह अवर्णवाद इसी तरीके से संघ का अवर्णवाद, संघ बोला जाता है- रत्नत्रय से जो युक्त है उसका नाम है- संघ। यानी रत्नत्रय से युक्त एक मुनि महाराज भी हैं तो वे संघ कहलाते हैं। मुनि महाराज भी अपने आप में संघ है, समूह है क्योंकि उनके पास में भी बहुत गुण हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान,चारित्र ये उनके पास गुण हैं, इसी का नाम संघ है। संघ का मतलब कोई बहुत सारा चेला-चपाटे खड़े करना, उसका नाम संघ नहीं है। संघ अपने आप में 'रत्नत्रयोपेतः संघ' रत्नत्रय जो युक्त हैं वह संघ है। जो रत्नत्रय धारियों का ही समूह बन जाए उसका नाम संघ है। इसलिए संघ में ऋषि, मुनि, यति, अनगार ये 4 चीजें ली जाती हैं। जो संघ की वास्तविकता है वह यह है- ऋषि, मुनि, यति, अनगार। यह 4 नाम इसलिए हैं क्योंकि अलग-अलग quality वाले, अलग-अलग knowledge वाले, अलग-अलग तपस्या से उपलब्धियां हासिल करने वाले ऐसे चार category के लोग मुनि महाराज के रूप में साधु के रूप में हो सकते हैं।

- ऋषि उन्हें कहते हैं जिन्हें कोई ऋद्धियाँ हो जाती है।
- मुनि उन्हें कहते हैं जिन्हें अवधि ज्ञान, मन:पर्यय ज्ञान होते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान जिनके पास हो जाए, केवल ज्ञानी को भी मुनि कहते हैं।

- यति उन्हें कहते हैं जो मूल गुणों का, उत्तर गुणों का पालन करते हैं। अच्छे तपस्वी होते हैं, उन्हें यति कहते हैं, जो हमेशा यत्नाचार के साथ प्रवृत्ति करते हैं।
- अनगार वे कहलाते हैं जो सामान्यतः अपनी इंद्रियों को जीत कर के, अपने विषय कषायों को जीत करके अगार से रहित हुए अनगार हैं, साधु है, वह अनगार कहलाते हैं।

इन्हीं के समूह का नाम संघ है और इनका भी अवर्णवाद होता क्या करते हैं यह?

# Class 18

**3)** संघ का अवर्णवाद

साधु बन जाते हैं। माता-पिता की सेवा करते नहीं, साधु बन जाते हैं। जिन माता-पिता ने इतना बड़ा किया, इतना पढ़ाया-लिखाया, उनके लिए कर्तव्य नहीं बनता? कि उनके लिए भी कुछ सोचे भी, उनकी हिफाजत करे या उनके भी कुछ काम में आए। बस! छोड़ कर आ गए। काम-धंधा कुछ मिला नहीं होगा, साधु बन गए। बस! यह क्या हो गया? साधु का अवर्णवाद हो गया। नहाते-धोते हैं नहीं, मैले-कुचैले घूमते रहते हैं। cutting कराते नहीं, हाथ से अपने केशलोंच और कर लेते हैं। यह नहीं खाना, वह नहीं खाना, यह रस नहीं पीना, वह रस नहीं पीना, यह त्याग, वह त्याग। शरीर को पीड़ा देते हैं, दुःखी होते हैं और दूसरों को उपदेश देते रहते हैं, तुम भी दुःखी बनो। यहाँ दुःखी हैं, अगले जन्म में भी दुःखी होंगे। जब यही पर दुःखी हैं तो अगले जन्म में क्या सुखी होंगे वे? यह क्या हो गया? आप नहीं कह सकते हो वह आपकी शर्म है लेकिन अन्दर भाव तो सबके आता ही है न। लेकिन हम तो कह सकते हैं न, हमको पता है न सब क्या सोच सकते हैं? यह साधु का, संघ का अवर्णवाद है। अब आपको पता ही नहीं कि यह किस लिए, क्या कर रहे हैं? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र क्या होता है? इसका संबंध किससे होता है? इसका पालन कैसे किया जाता है? किसके लिए किया जाता है? इसके करने से क्या होता है? किसी चीज का कुछ knowledge ही नहीं। कुछ भी बोलने के लिए तो सब स्वतंत्र है ही। यह संघ का इस तरीके से अपयश करना, अपवाद करना या किसी भी साधु की इस तरह से बुराई करना, संघ का या साधु का अवर्णवाद कहलाता है। अब यह क्या है? दर्शन मोहनीय कर्म के आस्रव का कारण है।

पंचम काल है, संहनन होता नहीं है, भाव लिंग होता नहीं है, तपस्या होती नहीं है। सम्यग्दर्शन बहुत दुर्लभ है, वह होता नहीं है। आत्मानुभव कोई करता नहीं है, शुद्धोपयोग होता नहीं है, शुद्धोपयोगी श्रमण मिलते नहीं है, श्रमणों का अभाव है। पंचम काल में मुनि होत नहीं, भाव लिंगी होत नहीं। यह क्या है? अवर्णवाद। आपने पूरे काल का ही अवर्णवाद कर दिया मतलब इतना बड़ा मिथ्यात्व हो गया, कि पूरे पंचम काल में अब कोई साधु होगा ही नहीं और हो गया तो जिसने तुमको सुन लिया, तुमको पढ़ लिया तो उसकी नजर में वह साधु होगा ही नहीं। मतलब इतना बड़ा आपने मिथ्यात्व का बीज बो दिया। यह कहलाता है- संघ का अवर्णवाद। फिर देखो आगे क्या कहते हैं? धर्म! धर्म का अवर्णवाद क्या?

**4)** धर्म का अवर्णवाद

एक तो धर्म पहले क्या होता है? मान लो 'अहिंसा परमो धर्म' अहिंसा ही परम धर्म है। शास्त्रों में लिखा है- अहिंसा धर्म है, रत्नत्रय धर्म है ,जीव दया धर्म है, दस धर्म आदि का पालन करें, यह सब धर्म है? अब क्या हुआ? अब सुनने के बाद में आपने सोचा कि धर्म क्या होता है? ये जो अहिंसा का पालन करने वाले होते हैं क्या करते हैं? इन्हें जो अच्छा लगता है वह तो खाते हैं और जो नहीं अच्छा लगता है उन्हें दोष लगाते हैं। आलू नहीं खाना। क्यों नहीं खाना? जमीन में होता है। जमीन में क्या नहीं होता? जमीन से ही तो सब होता है। जो नहीं खाना, उसमें दोष लगाना और खाने-पीने से यह धर्म मान करके अपने-आप में कष्ट सहकर के यह बताना चाहते हैं कि देखो! मैं धार्मिक हूँ, सब अहंकारी हो जाते हैं। इस तरीके के अहंकार के साथ में ये अपने आप को बड़ा त्यागी मानते हैं, व्रती मानते हैं। इस तरह के धर्म से कभी किसी का कल्याण हुआ नहीं है। रात में नहीं खाना! अरे भाई दिन और रात किसके लिए? आदमी किसके लिए बना है? भोजन किसके लिए? यह किसने मना किया है कि रात में नहीं खाना। रात में खाने से क्या हो जाता है? कौन सी हिंसा हो जाती है, रात में खाने से? वह जमाना गया, जब lights नहीं थी, आज देखो बिलकुल moonlight फेल है, halogen के आगे। जब इस तरह का कोई भी बोलेगा तो उसकी बात को सब सही कहेंगे। यह पुराने जमाने का धर्म था, जब lights नहीं थी तब रात में खाना नहीं करना पड़ता था। रात में कोई भी मेंढक-छिपकली आकर गिर जाता होगा। अंधेरे में कोई दिखाई नहीं देता हो। आजकल कहाँ मेंढक-छिपकली? घर में कोई कीड़ा तो दिखाई नहीं देता। यह सब पुराने जमाने की बातें हैं। इसे आज भी धर्म मानना, अब तो आलू भी पेड़ों पर उगने लगा है। modern science को तो जानते नहीं, अंडा शाकाहार हो रहा है। आलू पेड़ पर उगने लगा है। आजकल रात होती नहीं, दिन रात-बराबर होते हैं। जैसे वे कहते हैं- समवशरण में दिन-रात का फर्क नहीं होता। मेरे घर में दिन-रात होता ही नहीं light ही light होती है। अब ये शास्त्रों में लिखी बातें बस! मानते रहो और जो है कष्ट सहते रहो, स्वर्ग और मोक्ष की बातें करते रहो। इससे कुछ होना जाना तो है नहीं है। इस तरह से धर्म का बिल्कुल उपहास करना। धर्म को ताक पर रख देना। कोई भी धर्म कर रहा है उसके लिए देखो यह बन गए पंडित जी। बस! मंदिर चले गए, भगवान के ऊपर पानी डोल आए और अपने आपको धार्मिक मानने लग गए। धर्म और धार्मिक का इस तरीके से उपहास करना यह क्या है? यह धर्म का अवर्णवाद है। धर्म करने से स्वर्ग मिलता है, धर्म करना अपने लिए हितकारी है। क्या हित होता है? धर्म करने से यहाँ भी कष्ट हो रहा है और जब यहाँ कष्ट हो रहा है, तो आगे भी कष्ट ही होगा। यहाँ सुखी रहोगे तो आगे भी सुखी रहोगे। जो यहाँ दुःखी है वह आगे सुखी कैसे हो सकता है? धर्म का इस तरीके से जो व्याख्यान होगा, वह धर्म का अवर्णवाद कहलाएगा।

**5)** देव का अवर्णवाद

फिर क्या कहते हैं? देव! देव तो आप जानते ही हो। देवी-देवता, इनका भी अवर्णवाद होता है। अब देवी-देवता क्या होते हैं? देवी-देवता ही भगवान होते हैं। जिसके जैसे देवी-देवता हैं, उसको उसी रूप में मानना। अपने से तो कम से कम बड़े हैं ही ये। किसी ने कैसे भी देवी-देवता बना लिए, चाहे उसके दस मुँह बना लिए, चाहे उसके दस हाथ बना दिये। भैया देवी-देवता हैं, अपने से तो बड़े हैं, पैर छुओ और काम चलाओ। अब यह कहो कि देव तो अच्छे ही होते हैं उनका रूप अच्छा ही होता है यह सब विकृतियाँ हैं। अब इस विकृति को भी मिथ्या बुद्धि वाला विकृति नहीं मानेगा। वह क्या कहेगा? देव तो देव ही है। जितने भी प्रकार के देव दिखाई दे रहे हैं, हजारों प्रकार के देव हैं। भारतीय संस्कृति है, इसमें आपको लाखों तरीके के देव मिलेंगे। दुनिया में और कहीं नहीं मिलेंगे। 33 करोड़, 68 करोड़ जितने भी कह लो। सब देवी-देवता आपको यहाँ भारत में ही मिलेंगे। अब इतने देवी-देवताओं में सबके रूप जो जैनी होंगे वे क्या पढ़ेंगे? सबका समचतुर्संस्थान होता है, अमृत का आहार करते हैं। पसीना आता नहीं, नींद आती नहीं, खाते-पीते कुछ है नहीं। मांस नहीं खाते, मदिरा नहीं पीते, यह सब इन जैनों ने देवों का अवर्णवाद कर रखा है। जिसका जैसा स्वरूप है, उसको वैसा मानना तो सही है और वैसा नहीं मानना? अवर्णवाद है और आप वैसा मान नहीं पा रहे हो। अब जैनियों में ही कितने लोग हैं, जो देवी देवताओं को कितने विकृत स्वरूप में मानते हैं। कुछ भी मानते हैं। जिनका न मुँह दिख रहा है, न हाथ दिख रहा है, न कुछ पैर दिख रहे हैं लेकिन फिर भी जगह-जगह पर देवी देवताओं के रूप में पूजे जाते हैं। जगह-जगह पर बने रहते हैं और बनाते भी हैं तो हम यह देवी–देवताओं का इस तरीके का स्वरूप मान रहें हैं तो आचार्य कहते हैं- यह सब अवर्णवाद है। आप उनके साथ क्या कर रहे हो? आप उन्हें भी गांजा पिला रहे हो, उन्हें भी शराब पिला रहे हो। उन्हें भी मांस खिला रहे हो, उन्हें भी बलि चढ़ा रहे हो। क्यों? क्योंकि वे खाते हैं, वे मांगते हैं। उन्हें अगर हम दे देते हैं तो संतुष्ट हो जाते हैं। इस तरह की धारणा यह भी देवों का अवर्णवाद है।

लेकिन जब आपके लिए इस तरह से कोई कहता है तो आपको यह लगता है कि यह सब गलत है। वास्तव में देव तो वही है, भगवान तो वही है जो हमारी जैसी मस्ती करे और जो हम करे, वह भी करे। इसलिए हम क्या करे? पहले उसको पिला दे, फिर हम पिए। वह भगवान तो सबको अच्छे लगते हैं, वह देवता तो सब को अच्छा लगेगा और आप हो कि देवता तो कभी शराब पीता ही नहीं। तुम कभी शराब पी ही नहीं सकते। देवों का अवर्णवाद! कैसे होता है? देव लोग सुरापान करते हैं, मांस खाते हैं मदिरापान करते हैं बलि चढ़ाने में आनंदित होते हैं। यह सब क्या है? अवर्णवाद। उनका ऐसा विकृत स्वरूप है, वह डरावने हैं, ये वो मां है, वह मां है। बस! कोई किसी तरीके की है, कोई किसी तरीके की है। माँ भी इतनी डरावनी हो जाए तो बेटा क्या करेगा? अब उसको इसी तरीके से मानना यह अपने आप में देव का विकृतपना है। लेकिन हम उस विकृत को तो सही मान रहे हैं और अगर उसे कोई गलत कहता है, तो हम उसके ऊपर हावी हो जाते हैं। तुमने हमारे लिए ऐसे गलत क्यों कह दिया? किसी के लिए भैया गलत मत कहो। अपनी बुद्धि सही रखो।

भगवान और केवली अलग-अलग हैं, देव अलग हैं

देव अलग चीज है, भगवान अलग चीज हैं इसीलिए केवली को अलग रखा है और देव को अलग रखा है। आज के पढ़े-लिखे लोग भगवान में और देवों में फर्क ही नहीं करते। हमारे लिए तो सब देव हैं, भगवान है, बराबर है, किसी भी पढ़े लिखे आदमी से कहो हमसे तो बड़े हैं ही हैं। भगवान की तो आपस में लड़ाई होती नहीं। हम ही लोग भगवान के लिए लड़ते रहते हैं तो इसलिए हमें नहीं लड़ना भगवान के लिए। भगवान आपस में जाने उनका क्या हो रहा है? ये हैं कि नहीं, हमारे लिए तो सब बराबर हैं। तुमने केवली को भी और देव को भी सब एक तराजू में तोल दिया। बस! यह क्या हो गया? सब तरह का अवर्णवाद हो गया। इतनी जितनी भी बातें आपने सुनी है, ये सब मिथ्या विचार, मिथ्या बातें, जिनमें हम भी कभी उलझ जाते हैं या हमारे बच्चे उलझे रहते हैं और इस तरीके की बातें जब बच्चे करते हैं तो आपके पास कोई उत्तर नहीं होते हैं। कम से कम आप को क्षण भर के लिए सोचना चाहिए कि यह बच्चा नहीं बोल रहा है, यह उसके अंदर का मिथ्यात्व बोल रहा है। क्योंकि जब तक उसके पास में समीचीन ज्ञान नहीं होगा तब तक वह उल्टा ही बोलेगा। यह उसका मिथ्या ज्ञान बोलता है, आदमी नहीं बोलता, उसके भीतर का मिथ्या ज्ञान बोलता है। ज्ञान अगर उल्टा है तो उल्टी बातें करेगा और ज्ञान अगर सीधा है तो सीधी बातें करेगा तो उल्टी बातों में वह सब की धज्जियाँ उड़ा देता है। हम उसे बहुत बड़ा चिंतक समझते हैं, बहुत बड़ा प्रवचनकार समझते हैं। बहुत बड़ा intelligent आदमी समझते हैं, ऐसी intelligency ही तो सबके पास हो सकती है। उल्टा बोलना और उल्टा बोल करके जो जन-समुदाय उल्टी बुद्धि में चल रहा है, उस जन समुदाय में अपने लिए वाहवाही लूट लेना। यह कोई भी ज्ञान नहीं है। यह सम्यग्ज्ञान की श्रेणी में नहीं आता। जमाने से यही होता आया है और आज भी जमाना इसी रूप में आगे बढ़ रहा है। जो कुछ मुट्ठी भर लोग हैं वह अपनी बुद्धि संभाले अपने विवेक से काम करें और अपने बच्चों को भी अच्छे संस्कार दे करके उन्हें जैन होने में खुश न हो जाए कुछ नहीं यह भीतर की बातें समझाएँ कि केवली क्या होते हैं? देव क्या होते हैं? भगवान का कहा हुआ श्रुत क्या है? धर्म क्या है? यह कितना पवित्र है? और इसके माध्यम से क्या लाभ होते हैं? इसके विषय में हमें जो भी misconception है, उन्हें हमें दूर करने की भरपूर कोशिश करनी चाहिए। इतना कहकर नहीं छोड़ देना चाहिए क्या करें महाराज बच्चे सुनते ही नहीं। इस से काम नहीं चलेगा। सुनाना तो आपको पड़ेगा ,समझाना आपको पड़ेगा। उपाय अपनाओ, हर तरीके से बच्चों को समझने की कोशिश करो तभी उनका जैन होना सार्थक होगा अन्यथा यह मिथ्या कर्म के आस्रव उन्हें आगे मिथ्या दृष्टि ही बनाये रखेंगे।